Shodh Prabha: A Multidisciplinary Journal
ISSN: 3108-2726 (Online), 3108-2890 (Print), Volume-1, Issue-5, (Sep – Oct) 2025

सुमित्रानंदन पंत के काव्य में प्रकृति से मानवतावाद तक की विकास-यात्रा

कोमल यादव
शोधार्थी हिन्दी विभाग, वी. एस. एस. डी. कॉलेज कानपुर

सारांश

सुमित्रानंदन पंत की काव्य-यात्रा को प्रायः आरंभिक प्रकृति-सौन्दर्य, मध्यवर्ती प्रगतिशीलता और उत्तरवर्ती अध्यात्म के पृथक चरणों में बाँटकर देखा गया है। ऐसा विभाजन अध्ययन की सुविधा तो देता है, किंतु उनकी काव्य-चेतना के भीतर सक्रिय निरंतरता को पूरी तरह नहीं पकड़ पाता। प्रस्तुत आलेख की केंद्रीय स्थापना यह है कि पंत के यहाँ प्रकृति से मानवतावाद की ओर गति प्रकृति के परित्याग की नहीं, उसके अर्थ-विस्तार की प्रक्रिया है। आरंभ में प्रकृति कवि के आत्मीय अनुभव, रूप-संवेदना और कल्पना का स्वतंत्र लोक बनती है; 'परिवर्तन' में उसी सौन्दर्य-बोध के भीतर क्षय, दुःख और ऐतिहासिक अस्थिरता का प्रवेश होता है; 'युगान्त' और 'ग्राम्या' से मनुष्य, श्रम, भूख, विषमता और जन-संस्कृति काव्य के केंद्र में आते हैं। बाद की रचनाओं में यह मानवतावाद गांधीवादी नैतिकता, सामाजिक परिवर्तन और आध्यात्मिक-भौतिक समन्वय की आकांक्षा से जुड़ता है। आलेख में 'मोह', 'परिवर्तन', 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र', 'मानव', 'ग्राम कवि', 'कहारों का रुद्र नृत्य', 'महात्मा जी के प्रति' और 'कवि कृषक' सहित अनेक कविताओं का पाठ-आधारित विश्लेषण किया गया है। साथ ही पंत की ग्राम-दृष्टि, अमूर्त मानववाद और स्त्री-चित्रण की सीमाओं पर भी विचार किया गया है। निष्कर्षतः उनकी विकास-यात्रा प्रकृति, मनुष्य और विश्व-चेतना के क्रमशः व्यापक होते संबंध की यात्रा सिद्ध होती है।

बीज शब्द- सुमित्रानंदन पंत, प्रकृति-चेतना, सौन्दर्य-बोध, मानवतावाद, ग्राम-जीवन, जन-संस्कृति, नव-मानवता

मुख्य आलेख

सुमित्रानंदन पंत के काव्य-विकास को समझने का मूल प्रश्न यह नहीं है कि वे कब प्रकृति के कवि रहे और कब मानवतावादी बने; अधिक सार्थक प्रश्न यह है कि उनकी प्रकृति-संवेदना किन आंतरिक और ऐतिहासिक दबावों से गुजरते हुए मनुष्य-केंद्रित नैतिक चेतना में रूपांतरित हुई। उनकी आरंभिक कविता में प्रकृति दृश्य-वर्णन की बाहरी सामग्री नहीं, अनुभव का जीवित प्रतिपक्ष है। वृक्ष, छाया, पवन, पुष्प, पक्षी, उषा और संध्या कवि के अंतर्जगत के साथ संवाद करते हैं। आगे चलकर यही संवाद क्षय, दुःख, भूख, श्रम और सामाजिक विषमता को ग्रहण करता है। इसीलिए पंत की विकास-यात्रा को प्रकृति और मनुष्य के बीच चुनाव के रूप में देखना भ्रामक होगा। उनके यहाँ प्रकृति पहले मनुष्य के भाव-जगत को भाषा देती है, फिर इतिहास की निर्ममता का प्रतीक बनती है और अंततः मानव-मुक्ति की कल्पना के लिए नैतिक तथा रूपात्मक आधार प्रदान करती है।

यह यात्रा सीधी, निर्विघ्न और एकरेखीय नहीं है। आरंभिक रूप-मोह बाद की सामाजिक कविताओं में भी लौटता है; जनजीवन की करुणा के भीतर सौन्दर्य-साधना बनी रहती है; आध्यात्मिक समन्वय के बीच प्रगतिशील युग-बोध समाप्त नहीं होता। इसी प्रकार मानवतावाद भी एक स्थिर विचार नहीं है। कभी वह मनुष्य की सृजनात्मक महिमा का उत्सव है, कभी भूखे और नग्न जन के पक्ष में नैतिक प्रतिवाद, कभी गांधी के माध्यम से लोकशक्ति का सम्मान और कभी भौतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के समन्वय का स्वप्न। पंत की उपलब्धि इन विविध आग्रहों को एक व्यापक संवेदनात्मक

धरातल पर रखने में है, जबकि उनकी सीमा यह है कि अनेक बार ठोस सामाजिक अंतर्विरोध एक उदार, सार्वभौम और कुछ अमूर्त 'मानवता' में विलीन हो जाते हैं।

प्रकृति का आत्मीय लोक और मानव की छिपी उपस्थिति

पंत की आरंभिक प्रकृति-कविता की विशिष्टता उसके सूक्ष्म दृश्य-बोध में ही नहीं, प्रकृति के साथ स्थापित रागात्मक निकटता में है। प्रकृति उनके लिए निर्जीव परिवेश नहीं, ऐसा आत्मीय लोक है जिसमें मनुष्य अपने व्यक्तित्व की सीमाओं से बाहर निकलता और स्वयं को व्यापक जीवन में अनुभव करता है। 'मोह' की आरंभिक पंक्तियाँ इस संबंध को अत्यंत रोचक ढंग से सामने लाती हैं—

"छोड़ द्रुमों की मृदु-छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को!"[1]

इन पंक्तियों में एक ओर मानवीय प्रेम का आकर्षण है, दूसरी ओर प्रकृति के साथ पहले से बनी हुई गहरी माया। कवि प्रेमिका के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट है, पर उसके लिए प्रकृति से संबंध तोड़ना सहज नहीं। 'द्रुमों की मृदु-छाया' केवल दृश्य नहीं, अस्तित्वगत आश्रय है। इस छोटे से प्रसंग में आरंभिक पंत की वह मूल संरचना दिखाई देती है जिसमें मनुष्य और प्रकृति प्रतिस्पर्धी भी हैं और परस्पर प्रतिबिंबित भी। प्रेमिका के बाल-जाल तथा प्रकृति की माया दोनों आकर्षण के रूप हैं; अतः प्रकृति से मानव की ओर गति आरंभ से ही कविता के भीतर मौजूद है। मनुष्य यहाँ बाद में अचानक प्रवेश करने वाला विषय नहीं, प्रकृति-सौन्दर्य के अनुभव में छिपी हुई संभावना है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पंत की आरंभिक रचनाओं में प्रकृति के सुंदर रूपों की आह्लादमयी अनुभूति तथा उस अनुभूति से प्रेरित रमणीय अप्रस्तुत-विधान को उनकी प्रमुख विशेषता माना था।[2] यह टिप्पणी पंत के आरंभिक काव्य की शक्ति का सही संकेत करती है। प्रकृति उनके यहाँ इसलिए आकर्षक नहीं कि वह वस्तुतः सुंदर है, बल्कि इसलिए कि कवि की कल्पना उसमें भावों की अनेक दिशाएँ खोल देती है। किसी किरण, पत्ती, छाया या पवन की गति मानसिक व्यापार का रूप ग्रहण कर लेती है। प्रकृति और अंतर्मन की यह तदाकारिता छायावादी निजता का आधार बनती है, पर इसी के भीतर मानवीय संवेदना की भूमि भी तैयार होती है। जो कवि पत्ते के कंपन, प्रकाश की क्षीण रेखा और पवन की मृदु गति को सुन सकता है, वही आगे चलकर भूख, श्रम और अवमानना के सूक्ष्म मानवीय संकेतों को ग्रहण करने की क्षमता अर्जित करता है।

फिर भी आरंभिक काव्य को केवल निर्दोष प्रकृति-साधना मान लेना उचित नहीं होगा। उसकी भाषा कई बार रूप-सजगता के अतिशय से बोझिल हो जाती है। शुक्ल ने 'पल्लव' की चित्रमयी भाषा, लाक्षणिक वैचित्र्य और अप्रस्तुत-विधान की प्रशंसा करते हुए यह भी इंगित किया कि कहीं-कहीं चमत्कार और वक्रता के लिए आरोपित प्रयोग अशक्त तथा अनावश्यक बन गए हैं।[3] इस आलोचना का महत्त्व इसलिए है कि पंत की आगे की यात्रा केवल विषय बदलने की यात्रा नहीं, भाषा को जीवन के अधिक कठोर यथार्थ के अनुकूल बनाने की भी यात्रा है। आरंभिक काव्य की कोमलता ने हिंदी कविता को नया रंग, संगीत और दृश्यात्मकता दी, किंतु वही कोमलता यदि आत्मतुष्ट रूप-मोह में बंद रहती तो सामाजिक मनुष्यता तक पहुँचना कठिन था।

पंत की प्रकृति-संवेदना में आरंभ से एक नैतिक संकेत भी विद्यमान है। प्रकृति की विविधता में कोई रूप पूर्णतः अकेला नहीं; प्रत्येक वस्तु दूसरे से संबंध में अर्थ पाती है। पुष्प को पवन, पत्ती को प्रकाश, पक्षी को आकाश और मनुष्य को संपूर्ण जगत से जोड़ने वाली यह दृष्टि आगे चलकर सह-अस्तित्व की मानवीय अवधारणा का आधार बनती है। आरंभिक कविता में यह विचार सिद्धांत के रूप में नहीं आता, किंतु संवेदना की पद्धति के रूप में उपस्थित रहता है। पंत वस्तुओं को अलग-अलग नहीं देखते; वे उनके बीच स्पर्श, आकर्षण, छाया, ध्वनि और गति के संबंध खोजते हैं। यही संबंध-दृष्टि उनके मानवतावाद का प्रारंभिक संस्कार है।

इसके बावजूद आरंभिक प्रकृति-लोक की सामाजिक सीमा स्पष्ट है। वह मुख्यतः संवेदनशील, शिक्षित, सौन्दर्याभिमुख व्यक्तित्व की अनुभूति का संसार है। उसमें किसान का श्रम, स्त्री का सामाजिक बंधन, जातिगत दमन अथवा आर्थिक अभाव प्रत्यक्ष नहीं हैं। प्रकृति मनुष्य को विश्व से जोड़ती अवश्य है, पर मनुष्यों के बीच शक्ति-संबंधों की पहचान अभी धुँधली है। इसलिए पंत के विकास का अगला चरण आवश्यक था—ऐसा चरण जिसमें सौन्दर्य के भीतर क्षय की रेखा दिखाई दे और शाश्वत प्रतीत होने वाला प्राकृतिक सामंजस्य इतिहास की कठोरता से विचलित हो।

रूप-मोह से जीवन-बोध तक : 'परिवर्तन' और 'युगान्त'

'परिवर्तन' पंत की काव्य-चेतना में निर्णायक मोड़ का कार्य करती है। इसमें प्रकृति अब केवल कोमल, सामंजस्यपूर्ण और आनंदमय सत्ता नहीं रहती; वह सृजन और विनाश, यौवन और जरा, उत्थान और पतन की द्वंद्वात्मक प्रक्रिया बन जाती है। कविता का प्रश्न स्मृत स्वर्णयुग की खोज से शुरू होता है—

"अये, विश्व का स्वर्ण-स्वप्न, संसृति का प्रथम-प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद-विख्यात?
दुरित, दुख, दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा-मरण-भ्रू-पात!"[4]

यहाँ प्रकृति-सौन्दर्य पहली बार इतिहास और मृत्यु-बोध के सामने अस्थिर दिखाई देता है। कवि उस काल्पनिक प्रथम प्रभात को याद करता है जहाँ दुःख, दैन्य और जरा-मरण अपरिचित थे, किंतु कविता शीघ्र ही इस स्वप्न को मिथ्या घोषित करती है। इस बिंदु पर पंत की दृष्टि में सौन्दर्य और करुणा अलग नहीं रहते। खिलना झरने की संभावना से जुड़ता है; यौवन में कंकाल की छाया दिखाई देती है; मधुमास शिशिर की सूनी साँस से घिर जाता है। यह बोध प्रकृति से विमुख नहीं करता, बल्कि प्रकृति को परिवर्तनशील जीवन की विराट प्रक्रिया के रूप में समझने की ओर ले जाता है।

'परिवर्तन' की महत्ता इस बात में है कि वह आरंभिक रागात्मकता को नष्ट नहीं करती, उसके भोले स्थायित्व-बोध को तोड़ती है। सुंदरता अब क्षणभंगुर होने के कारण अधिक करुण और अर्थवान बनती है। यही करुणा आगे मनुष्य की पीड़ा की ओर बढ़ने वाला सेतु है। जब कवि प्राकृतिक रूपों में विघटन और नश्वरता को पहचानता है, तब वह सामाजिक व्यवस्था के जड़, पुरातन और अमानवीय रूपों को भी प्रश्नांकित करने की वैचारिक क्षमता प्राप्त करता है। सौन्दर्य का अनुभव यहाँ इतिहास-बोध में बदलने लगता है।

पंत ने अपनी भूमिका 'चरण-चिह्न' में 'चिदंबरा' को अपनी "काव्य-चेतना के द्वितीय उत्थान" की परिचायिका कहा और उसमें 'युगवाणी' से 'अतिमा' तक की रचनाओं को रखा है।[5] यह आत्मस्वीकृति बताती है कि कवि स्वयं अपने विकास को एक नए चेतनात्मक उत्थान के रूप में देखता था। प्रथम चरण का प्रकृति-काव्य नकारा नहीं गया; उसे पीछे छोड़कर

नहीं, उसके भीतर संचित संवेदनात्मक शक्ति को नए युग-बोध में रूपांतरित करके आगे बढ़ा गया। 'गुंजन' में आत्मविश्वास और जगत से अपनापन खोजने वाला स्वर 'ज्योत्स्ना' में सामाजिक रूपांतरण की आकांक्षा ग्रहण करता है और 'युगान्त' में पुरानी जड़ताओं के उच्छेद का उद्घोष बन जाता है। 'युगान्त' की प्रथम कविता प्रकृति के रूपक में ऐतिहासिक परिवर्तन की माँग करती है—

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र!
हे स्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीत-राग, जड़, पुराचीन!!"[6]

यहाँ 'जीर्ण पत्र' केवल पतझर के पत्ते नहीं, जड़ सामाजिक संस्थाओं, मृत परंपराओं और निष्प्राण मूल्यों के प्रतीक हैं। आरंभिक पंत जिस पल्लव, पत्ती और पुष्प की रंग-सुषमा पर मुग्ध थे, वही प्राकृतिक शब्दावली अब परिवर्तनकारी अर्थ ग्रहण करती है। भाषा का सौन्दर्य बना रहता है, पर उसका प्रयोजन बदल जाता है। प्रकृति अब पलायन का प्रदेश नहीं; इतिहास को समझने और बदलने का रूपक है। 'द्रुत झरो' की तीव्र आज्ञा में कवि की सक्रिय सामाजिक इच्छा सुनाई देती है। पुराने को केवल इसलिए सम्मान नहीं मिल सकता कि वह पुराना है; जो जीवन-विरोधी, जड़ और शुष्क है, उसे झरना होगा ताकि नया पल्लवन संभव हो।

डॉ. नगेन्द्र ने 'युगान्त' को वह बिंदु माना जहाँ पंत पूर्ववर्ती सौन्दर्य-युग का अंत करते हैं और उनका करुण भाव मानव-जगत की मंगल-कामना से भर उठता है।[7] यह स्थापना कृति के स्वरूप को ठीक से पहचानती है, यद्यपि 'सौन्दर्य-युग का अंत' कथन को पूर्ण विच्छेद नहीं समझना चाहिए। वास्तव में सौन्दर्य का अंत नहीं होता; उसका मानदंड बदलता है। पहले सौन्दर्य मुख्यतः रूप, रंग, संगीत और कोमल स्पर्श में था, अब वह जीवन-वर्धक परिवर्तन, समानता और मानव-मर्यादा में खोजा जाने लगता है। सौन्दर्य का यह नैतिकीकरण पंत के मानवतावाद की केंद्रीय विशेषता है। इसी संग्रह की 'मानव' कविता प्रकृति और मनुष्य के संबंध को नई स्पष्टता देती है—

"सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल-सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम!"[8]

इन पंक्तियों को केवल मनुष्य की प्रकृति पर श्रेष्ठता की घोषणा समझना अधूरा होगा। मनुष्य 'सबकी तिल-सुषमा' से निर्मित है; अर्थात उसकी सुंदरता प्रकृति से बाहर या उसके विरोध में नहीं, प्रकृति के विविध गुणों के संश्लेषण से बनी है। मनुष्य इसलिए सुंदरतम है कि वह सृष्टि की रूप-राशि को चेतना, करुणा और सृजन में बदल सकता है। फिर भी कविता में आधुनिक मानव-केंद्रिकता का जोखिम उपस्थित है। 'सुन्दरतम' की घोषणा यदि प्रकृति पर स्वामित्व के विचार से जुड़ जाए तो वही मनुष्य विनाशकारी भी हो सकता है। पंत का व्यापक काव्य इस खतरे को सीधे पर्यावरणीय शब्दावली में नहीं रखता, पर मनुष्य की श्रेष्ठता को संवेदनशीलता और लोकमंगल से बाँधता है। नैतिक गुणों से रिक्त मनुष्य उनकी दृष्टि में मानवता का प्रतिनिधि नहीं हो सकता।

नगेन्द्र ने इस कविता पर टिप्पणी करते हुए कहा कि "प्रकृति का कवि अब 'मानवपन' पर मुग्ध हो गया है।"[9] इस संक्षिप्त कथन में विकास की दिशा स्पष्ट होती है, पर उसके भीतर निरंतरता को जोड़ना आवश्यक है। पंत जिस 'मानवपन' पर मुग्ध हैं, उसकी भाषा और कल्पना प्रकृति से अर्जित है। मानव-देह में फूल, पक्षी, प्रकाश, छाया और रंगों की सुषमा देखना बताता है कि उनका मानवतावाद प्रकृति-विमुख तर्कवाद नहीं, सौन्दर्य और संवेदना से निर्मित मानववाद है। यहाँ से कविता का केंद्र व्यक्ति की निजी अनुभूति से निकलकर सामाजिक मनुष्य की ओर बढ़ता है।

ग्राम, श्रम और जन-संस्कृति : मानवतावादी विस्तार

'युगान्त' में व्यक्त नई मनुष्य-केंद्रित दृष्टि 'ग्राम्या' और उससे संबद्ध कविताओं में ठोस सामाजिक धरातल प्राप्त करती है। अब प्रश्न केवल मनुष्य की दार्शनिक महिमा का नहीं, उसके वास्तविक जीवन की दशाओं का है। ग्रामीण भारत, भूख, नग्नता, श्रम, अशिक्षा, शोषण और सांस्कृतिक उपेक्षा पंत की कविता में प्रवेश करते हैं। 'ग्राम कवि' आरंभिक काव्य की प्रकृति-संगीतात्मक शब्दावली को स्वयं उलट देती है—

"यहाँ न पल्लव वन में मर्मर,
यहाँ न मधु विहगों में गुंजन,
जीवन का संगीत बन रहा
यहाँ अतृप्त हृदय का रोदन!"[10]

'पल्लव', 'मर्मर' और 'गुंजन' पंत के आरंभिक काव्य-संसार के केंद्रीय शब्द हैं। 'ग्राम कवि' में उन्हीं शब्दों का निषेध बताता है कि ग्रामीण यथार्थ को पुराने सौन्दर्य-मापदंड से नहीं समझा जा सकता। जहाँ उदर क्षुधित और तन नग्न है, वहाँ सुंदरता की चर्चा नैतिक रूप से संदिग्ध हो जाती है। कविता सौन्दर्य का निषेध नहीं करती; वह पूछती है कि सौन्दर्य किसके जीवन से बनता है और किसकी पीड़ा को छिपाता है। इस प्रकार पंत का मानवतावाद करुणा से आगे बढ़कर आत्मालोचना का रूप ग्रहण करता है। कवि अपनी ही पूर्ववर्ती भाषा और रुचि को ग्राम-यथार्थ के सामने कसौटी पर रखता है।

इस परिवर्तन के बावजूद पंत की ग्राम-दृष्टि को पूर्ण यथार्थवाद कहना कठिन है। उसमें ग्रामीण जीवन के प्रति गहरी सहानुभूति है, पर यह सहानुभूति अधिकतर बाहर से देखने वाले संवेदनशील कवि की है। साक्षी कुमारी, नेहा सिन्हा, प्रीति कुमारी और मंजुला सुशीला ने पंत की प्रकृति-दृष्टि के साथ जनगण के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति को रेखांकित किया है।[11] यह सहानुभूति निश्चय ही सतही नहीं, किंतु सहानुभूति और सामाजिक अनुभव की आत्मीय साझेदारी एक ही बात नहीं हैं। पंत ग्रामीण दुःख को देखते, उससे विचलित होते और उसके पक्ष में नैतिक स्वर उठाते हैं; फिर भी जाति-संरचना, भूमि-संबंध, श्रम-विभाजन और ग्रामीण सत्ता की जटिलताओं का विश्लेषण उनकी कविता में सीमित है। उनका ग्राम प्रायः 'शोषित जन' की व्यापक छवि बनता है, जिसमें अलग-अलग समुदायों के अनुभवों की विशिष्टता कम दिखाई देती है।

'ग्राम युवती' इस अंतर्विरोध का उदाहरण है। कविता ग्रामीण स्त्री को गतिशील, उन्मुक्त और आकर्षक देह-छवि के रूप में सामने लाती है; उसके वर्ण, चाल, अंग-संचालन और यौवन पर कवि की दृष्टि लंबे समय तक ठहरती है।[12] इससे ग्रामीण जीवन की जीवंतता तो व्यक्त होती है, पर स्त्री का श्रम, सामाजिक असुरक्षा और स्वयं की वाणी पीछे छूट जाती है। मानवीय सहानुभूति के व्यापक दावे के बीच यह पुरुष-दृष्टि पंत के मानवतावाद की लैंगिक सीमा दिखाती है। फिर

भी इस सीमा की पहचान उनके संपूर्ण ग्राम-काव्य को अस्वीकार नहीं करती; वह बताती है कि मानवतावाद तभी पूर्ण हो सकता है जब 'मानव' की सार्वभौम संज्ञा के भीतर स्त्री, दलित, श्रमिक और हाशिये के अन्य अनुभव अपनी विशिष्ट आवाज के साथ उपस्थित हों।

पंत का ग्राम-काव्य केवल दैन्य का चित्रण नहीं है। उसमें लोक की सामूहिक ऊर्जा, श्रम-संस्कृति और देहगत लय के प्रति आकर्षण भी है। 'कहारों का रुद्र नृत्य' में कवि लोकनृत्य को आदिम अथवा मनोरंजक दृश्य की तरह नहीं, जन-इच्छा और संस्कृति के प्रखर उद्घाटन की तरह अनुभव करता है—

"वाद्यों के उन्मत्त घोष से, गायन स्वर में कंपित,
जन इच्छा का गाढ़ चित्र कर हृदय पटल पर अंकित,
खोल गए संसार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर,
जन संस्कृति का तिग्म स्फीत सौन्दर्य स्वप्न दिखला कर!
युग युग के सत्याभासों से पीड़ित मेरा अन्तर
जन मानव गौरव पर विस्मित मैं भावी चिंतनपर!"[13]

यहाँ 'जन' दया का निष्क्रिय पात्र नहीं, सांस्कृतिक सर्जक है। नृत्य की लय कवि के सामने ऐसा संसार खोलती है जहाँ सामूहिक देह, श्रम और उत्सव अपनी स्वतंत्र सौन्दर्य-शक्ति रखते हैं। आरंभिक प्रकृति-कविता का संगीत अब लोकवाद्यों, पदचाप और सामूहिक गति में रूपांतरित हुआ है। 'जन संस्कृति' का स्वप्न पंत के मानवतावाद को लोकतांत्रिक दिशा देता है। मानव-मर्यादा केवल अमूर्त आत्मा की गरिमा नहीं; वह जनसमुदाय की रचनात्मकता को पहचानने में भी है। कविता का 'रुद्र' विशेषण दबी हुई शक्ति, ऊर्जा और संभावित प्रतिरोध को संकेतित करता है।

इसी क्रम में 'भारत माता' राष्ट्र की अलौकिक, राजसी अथवा युद्धोन्मुख छवि के स्थान पर ग्रामवासिनी, धूल-भरे आँचल वाली, आँसू और दैन्य से घिरी स्त्री का रूप प्रस्तुत करती है। कविता नग्न, अर्धक्षुधित, शोषित, अशिक्षित और निर्धन संतानों के माध्यम से राष्ट्रवाद की नैतिक परीक्षा करती है।[14] यहाँ देश-प्रेम भूगोल या गौरवगान नहीं, जनजीवन की दशा के प्रति उत्तरदायित्व है। पंत का राष्ट्र तभी सार्थक है जब उसकी ग्रामवासिनी जनता भय, भूख और अपमान से मुक्त हो। प्रकृति-चित्र—खेतों का श्यामल विस्तार, गंगा-यमुना का जल, मिट्टी की प्रतिमा—अब केवल रमणीय नहीं; वे सामाजिक पीड़ा के चिह्न बनते हैं। इस रूपांतरण से स्पष्ट है कि प्रकृति की शब्दावली मानवतावादी राजनीति का माध्यम बन चुकी है।

फिर भी पंत की जन-दृष्टि क्रांतिकारी राजनीतिक कार्यक्रम की अपेक्षा नैतिक-सांस्कृतिक जागरण पर अधिक विश्वास करती है। वे शोषण और विषमता की आलोचना करते हैं, पर वर्ग-संघर्ष की कठोर वैचारिकता में स्वयं को सीमित नहीं करते। उनका आग्रह मनुष्य की अंतःचेतना, प्रेम, सहानुभूति और सांस्कृतिक रूपांतरण पर बना रहता है। यही कारण है कि उनकी प्रगतिशीलता मार्क्सवादी प्रभाव ग्रहण करने पर भी पूर्णतः भौतिकवादी नहीं होती। प्रकृति से प्राप्त रागात्मकता सामाजिक यथार्थ के बीच भी बनी रहती है और राजनीति को मानवीय संवेदना से जोड़ती है। यह उनकी शक्ति भी है और सीमा भी—शक्ति इसलिए कि कविता घोषणापत्र नहीं बनती; सीमा इसलिए कि संरचनात्मक अन्याय कभी-कभी अंतःपरिवर्तन की उदार आशा में सरल कर दिया जाता है।

समन्वित नव-मानवता : गांधी, अध्यात्म और वैचारिक सीमाएँ

पंत के मानवतावाद का अगला रूप गांधी के प्रति उनकी कविताओं और उत्तरवर्ती सांस्कृतिक-आध्यात्मिक चिंतन में दिखाई देता है। गांधी उनके लिए केवल राजनीतिक नेता नहीं, लोकशक्ति, आत्मानुशासन और साधन की नैतिकता के प्रतीक हैं। 'महात्मा जी के प्रति' में वे व्यक्ति की महानता को निजी यश से नहीं, लोक-सिद्धि का माध्यम बनने से मापते हैं—

"मानव आत्मा के प्रतीक! आदर्शों से तुम ऊपर,
निज उद्देश्यों से महान, निज यश से विशद चिरन्तन,
सिद्ध नहीं, तुम लोक सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम नर वरेण्य, गणजन विजयी साधारण!"[15]

इन पंक्तियों में 'गणजन विजयी साधारण' विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। गांधी की विजय अंततः साधारण जन की विजय है; महान व्यक्ति स्वयं में अंतिम लक्ष्य नहीं, सामूहिक मुक्ति का साधन है। यह दृष्टि पंत के आरंभिक व्यक्तिवादी सौन्दर्य-बोध से काफी आगे जाती है। अब कविता का आदर्श वह व्यक्तित्व है जो अपनी असाधारणता को जनसाधारण की शक्ति में विलीन कर दे। मानवतावाद यहाँ आत्मा की गरिमा, साधनों की शुद्धता और सामूहिक जीवन की नैतिक उन्नति का संयोजन है।

गांधीवादी प्रभाव पंत को मशीन, भौतिक प्रगति और आधुनिक सभ्यता के प्रश्नों से भी जोड़ता है, किंतु वे आधुनिकता का सरल निषेध नहीं करते। उनकी उत्तरवर्ती चेतना विज्ञान और अध्यात्म, बाह्य विकास और अंतःपरिष्कार, व्यक्ति और समाज के समन्वय की खोज करती है। 'चरण-चिह्न' में पंत सामाजिक-सांस्कृतिक मानवता को नए युग की रचना मानते हैं और आगे स्पष्ट करते हैं कि उनकी काव्य-चेतना आध्यात्मिकता तथा भौतिकता के "नवीन मनुष्यत्व" के धरातल पर संयोजन की आकांक्षी है।[16] इस कथन से उनके उत्तरवर्ती मानवतावाद का केंद्रीय स्वर समझ में आता है। वे न तो केवल आर्थिक परिवर्तन को पर्याप्त मानते हैं, न केवल अंतर्मुख आध्यात्मिक मुक्ति को। बाहरी संस्थाओं और भीतर की चेतना, दोनों का परिवर्तन आवश्यक है।

यह समन्वय प्रकृति से आरंभ हुई यात्रा की अंतिम परिणति भी है। प्रकृति ने उन्हें संबंध, लय, विविधता और जैविक विकास का बोध दिया था। सामाजिक कविता ने इन गुणों को मानव समुदाय, श्रम और संस्कृति में पहचाना। उत्तरवर्ती चिंतन उन्हें विश्व-चेतना और नव-मानवता के स्तर पर एकत्र करता है। इसीलिए उनके अध्यात्म को आरंभिक प्रकृति-सौन्दर्य की ओर वापसी नहीं कहा जा सकता। यह अनुभूति सामाजिक संघर्षों से गुजरकर अर्जित हुई है। प्रश्न यह है कि पदार्थ और चेतना, विज्ञान और मूल्य, व्यक्ति और समाज का विकास किस प्रकार परस्पर पूरक बनाया जाए। पंत की कविता इसका व्यवस्थित दार्शनिक समाधान नहीं देती, पर वह मनुष्य को केवल उत्पादन-इकाई, उपभोक्ता अथवा राजनीतिक संख्या में बदलने से इंकार करती है। 'कवि कृषक' में यह विचार अत्यंत अर्थपूर्ण रूपक में आता है—

"चिर जीर्ण विगत की खाद डाल
जन-भूमि बनाओ सम सुन्दर!"[17]

कवि यहाँ कृषक है, प्रतिभा उसका हल और मानव-अंतर उसकी भूमि। 'जीर्ण विगत' को पूरी तरह फेंका नहीं जाता; उसे खाद बनाकर नए जीवन में रूपांतरित करना है। यह रूपक पंत की संपूर्ण विकास-यात्रा का सार प्रस्तुत करता है।

आरंभिक प्रकृति-संवेदना, परंपरा, रूप-मोह और अतीत—सब नए मानवतावादी खेत के लिए सामग्री बनते हैं। कविता का उद्देश्य केवल सौन्दर्य उत्पन्न करना नहीं, निष्ठुर हो चुके मनुष्य-अंतर को जोतना और जन-भूमि को सम तथा सुंदर बनाना है। 'सम' और 'सुंदर' का साथ बताता है कि पंत के लिए न्याय और सौन्दर्य अंततः अलग मूल्य नहीं हैं। असमान समाज सौन्दर्यपूर्ण नहीं हो सकता; संवेदनाहीन मनुष्य सचमुच विकसित नहीं कहा जा सकता।

फिर भी इस नव-मानवता की अवधारणा पर आलोचनात्मक प्रश्न आवश्यक हैं। पहला प्रश्न उसकी अमूर्तता का है। 'मानव', 'जन', 'लोक' और 'विश्व-मानव' जैसी व्यापक संज्ञाएँ नैतिक समावेश का भाव देती हैं, पर अनेक बार इतिहास में मौजूद असमान पहचानों और संघर्षों को समतल कर देती हैं। जाति, पितृसत्ता, धार्मिक वर्चस्व और क्षेत्रीय असमानता जैसे प्रश्न पंत के सार्वभौम मानववाद में उतनी विशिष्टता से नहीं खुलते जितनी आज अपेक्षित है। दूसरा प्रश्न यह है कि अंतःचेतना के रूपांतरण पर उनका विश्वास कभी-कभी संस्थागत शक्ति और आर्थिक संबंधों की कठोरता को कम करके आँकता है। प्रेम और सहानुभूति आवश्यक हैं, पर न्याय के लिए अधिकार, प्रतिनिधित्व और संरचनात्मक परिवर्तन भी चाहिए।

निष्कर्ष

सुमित्रानंदन पंत के काव्य में प्रकृति से मानवतावाद तक की विकास-यात्रा को किसी एक चरण की समाप्ति और दूसरे की शुरुआत के रूप में नहीं समझा जा सकता। आरंभिक प्रकृति-सौन्दर्य ने उनकी कविता को सूक्ष्म संवेदना, संबंध-दृष्टि, लय, रंग और कल्पनात्मक भाषा दी। 'परिवर्तन' ने उसी सौन्दर्य-जगत के भीतर क्षय, दुःख और नश्वरता का बोध पैदा किया, जिससे रागात्मकता करुणा तथा इतिहास-बोध की ओर बढ़ी। 'युगान्त' में प्राकृतिक प्रतीक सामाजिक जड़ता के उच्छेद और नए मनुष्य की आकांक्षा के वाहक बने। 'ग्राम्या' से संबंधित कविताओं में भूख, नग्नता, श्रम, ग्रामजीवन और जन-संस्कृति ने मानवतावाद को वास्तविक सामाजिक धरातल दिया। गांधी-विषयक और उत्तरवर्ती रचनाओं में यह चेतना लोकशक्ति, नैतिक साधन, भौतिक-आध्यात्मिक समन्वय तथा नव-मानवता के स्वप्न से जुड़ी।

इस विकास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि पंत ने सौन्दर्य को धीरे-धीरे मानव-मर्यादा, समानता और लोकमंगल से संबद्ध किया। उनके यहाँ प्रकृति अंततः पीछे छूटा हुआ विषय नहीं, मानवतावादी दृष्टि का संवेदनात्मक आधार बनी रहती है। साथ ही उनकी सीमाएँ भी स्पष्ट हैं—ग्राम-जीवन का बाहरी अवलोकन, स्त्री का सौन्दर्यपरक वस्तुकरण, जाति और सत्ता-संबंधों की अपर्याप्त पहचान तथा कभी-कभी अमूर्त हो उठने वाला विश्व-मानववाद। इन सीमाओं के बावजूद उनकी काव्य-यात्रा आत्मसंशोधन और चेतना-विस्तार का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। आज पंत को पढ़ने की सार्थकता इसी में है कि उनका काव्य मनुष्य की गरिमा को प्रकृति-विरोधी प्रभुत्व में नहीं, संवेदना, सह-अस्तित्व, सामाजिक न्याय और उत्तरदायी सृजनशीलता में खोजने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ सूची

[1] सुमित्रानंदन पंत, 'मोह', पल्लव, प्रयाग: इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1926, पृ. 44

[2] रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, संशोधित संस्करण, 1940, पृ. 694

[3] रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, संशोधित संस्करण, 1940, पृ. 696

[4] सुमित्रानंदन पंत, 'परिवर्तन', पल्लव, प्रयाग: इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1926, पृ. 113

[5] सुमित्रानंदन पंत, 'चरण-चिह्न', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 9

[6] सुमित्रानंदन पंत, 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र', युगान्त, अल्मोड़ा: इन्द्र प्रिंटिंग वर्क्स, प्रथम संस्करण, 1936, पृ. 1

[7] नगेन्द्र, सुमित्रानन्दन पन्त, आगरा: साहित्य-रत्न-भण्डार, परिवर्द्धित एवं संशोधित षष्ठ संस्करण, संवत् 2012, पृ. 113

[8] सुमित्रानंदन पंत, 'मानव', युगान्त, अल्मोड़ा: इन्द्र प्रिंटिंग वर्क्स, प्रथम संस्करण, 1936, पृ. 46।

[9] नगेन्द्र, सुमित्रानन्दन पन्त, आगरा: साहित्य-रत्न-भण्डार, परिवर्द्धित एवं संशोधित षष्ठ संस्करण, संवत् 2012, पृ. 111

[10] सुमित्रानंदन पंत, 'ग्राम कवि', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 45

[11] साक्षी कुमारी, नेहा सिन्हा, प्रीति कुमारी एवं मंजुला सुशीला, 'प्रकृति के विविध रंग—सुमित्रानंदन पंत के संग', Explore—Journal of Research, खंड XI, अंक 2, 2019, पृ. 21– पृ.

[12] सुमित्रानंदन पंत, 'ग्राम युवती', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 47

[13] सुमित्रानंदन पंत, 'कहारों का रुद्र नृत्य', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 78

[14] सुमित्रानंदन पंत, 'भारत माता', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 79

[15] सुमित्रानंदन पंत, 'महात्मा जी के प्रति', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 80

[16] सुमित्रानंदन पंत, 'चरण-चिह्न', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 23, 27

[17] सुमित्रानंदन पंत, 'कवि कृषक', चिदंबरा, दिल्ली: राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण, 1959, पृ. 99